



दैनिक भास्कर

Date: 19-12-17

भाजपा की लोकप्रियता घटी, पर जनता का भरोसा कायम

हिमाचल प्रदेश में कांग्रेस के खिलाफ गई और उसके हाथ से एक और प्रदेश की सत्ता चली गई वही लहर गुजरात में ठिठक गई।

संपादकीय



गुजरात और हिमाचल विधानसभा चुनावों में भाजपा की विजय ने साबित कर दिया है कि पार्टी और उसके नेता प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी क्षेत्रीय अस्मिता, बहुसंख्यक राष्ट्रवाद और ईमानदारी सभी मुद्दों को अपने पक्ष में मोड़ने की कला में माहिर हैं और जनता का उन पर विश्वास कायम है। वे जब जिस मुद्दे को चाहें इस्तेमाल कर सकते हैं और जनता उनकी बात को गौर से सुनती और उन्हें अपना कीमती मतदान करती है। अगर ऐसा न होता तो क्या वजह थी कि जो सत्ता विरोधी लहर हिमाचल प्रदेश में कांग्रेस के खिलाफ गई और उसके हाथ से एक और प्रदेश की सत्ता चली गई वही लहर गुजरात

में ठिठक गई।

निश्चित तौर पर इन चुनावों के चैंपियन एक बार फिर नरेंद्र मोदी और उनकी लोकप्रियता को वोटों में परिवर्तित करने वाले अमित शाह बनकर उभरे हैं और इस भारतीय लोकतंत्र के चुनावी मैदान में लगातार अजेय होती जा रही इस जोड़ी ने कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी और उनके साथ जुड़े गुजरात के तीन युवाओं हार्दिक पटेल, जिग्नेश मेवानी और अल्पेश ठाकुर की तिकड़ी और उसके जातीय समीकरणों को ध्वस्त कर दिया। इसमें कोई दो राय नहीं कि नोटबंदी और जीएसटी से आम जनता और व्यापारियों को परेशानी हुई और वे नाराज भी थे लेकिन, नरेंद्र मोदी ने अपने इन कदमों को कांग्रेस के भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक कारगर हथियार के रूप में साबित कर दिया और इसीलिए वह नाराजगी उन्हें चुनावी नुकसान नहीं दिला सकी। इसके बावजूद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की जीत का श्रेय उस महाआख्यान को है जो उन्होंने बहुसंख्यक राष्ट्रवाद के साथ गुजराती अस्मिता को लेकर रचा है।

इन दोनों में किसी किस्म का टकराव नहीं है। मोदी लोगों को यह समझाने में सफल हो रहे हैं कि देश के हित की सर्वाधिक प्रामाणिक व्याख्या वे ही करते हैं और जो उनसे अहसमत हैं वे या तो विध्वंसंतोषी हैं या देशद्रोही हैं। उदारीकरण के ध्वस्त बाजार और जातिवाद, परिवारवाद और भ्रष्टाचार के कड़वे अनुभव के बाद जनता उसी पर रीझी हुई है। गुजरात चुनाव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि देश संघ की विचारधारा की ओर लगातार फिसल रहा है और उसका

विकल्प प्रस्तुत करने की क्षमता न तो कांग्रेस के मध्यमार्गीय सामाजिक दर्शन में है और न ही सामाजिक न्याय की दुहाई देने वाली पार्टियों में।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 19-12-17

जीत की सीख

संपादकीय



गुजरात और हिमाचल प्रदेश के विधानसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को मिली जीत उम्मीद के मुताबिक ही है लेकिन भारतीय राजनीति एवं नीति के भावी परिदृश्य के लिए इसके निहितार्थ भी हैं। जहां हिमाचल प्रदेश में भाजपा बड़े अंतर से जीती है वहीं गुजरात के साथ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का करीबी नाता होने के बावजूद पार्टी को वहां पर कहीं अधिक चुनौती मिली है। लेकिन भाजपा इससे राहत की सांस ले सकती है कि वह न केवल लगातार पांच बार से सत्ता में होने के बाद भी सत्ता-विरोधी रुझानों

का मुकाबला करने में सफल रही है बल्कि उसका मत-प्रतिशत भी पिछले विधानसभा चुनाव की तुलना में मामूली बढ़ा ही है। इसके अलावा राज्य की 40 सुरक्षित सीटों पर भी पार्टी का प्रदर्शन काफी सुधरा है। उत्तर गुजरात में पाटीदार आंदोलन के चलते कांग्रेस के अच्छा प्रदर्शन करने की उम्मीद की जा रही थी लेकिन भाजपा ने वहां पर भी बढ़िया प्रदर्शन करते हुए अचंभित कर दिया है। सोमवार के नतीजे एक बार फिर मोदी पर आए नतीजे हैं। पूरे गुजरात में मोदी के सघन चुनाव प्रचार करने के बाद नतीजों के भी अनुकूल आने से पता चलता है कि मतदाताओं की नजर में वह उनके अपने आदमी हैं। इन नतीजों ने यह भी दिखाया है कि भाजपा की चुनावी किस्मत के लिए मोदी कितने अपरिहार्य हो चुके हैं?

बहरहाल इस चुनाव में हार और जीत वाली सीटों का पैटर्न काफी कुछ कह जाता है। बड़ा कथ्य यह है कि कांग्रेस ने ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी गुजरात में भाजपा को कड़ी टक्कर दी है लेकिन शहरी इलाकों में उसका सफाया हो गया है। वैसे हरेक विधानसभा चुनाव अलग होता है और एक राज्य के नतीजों का निहितार्थ दूसरे राज्यों में मतदान के लिहाज से हमेशा साफ नहीं होता है लेकिन ग्रामीण और शहरी इलाकों का यह विभेद भावी चुनावों में भी नजर आ सकता है। ग्रामीण और शहरी इलाकों के मतदान की इस खाई के आगे अहम नतीजे देखने को मिल सकते हैं। वैसे गुजरात के शहरी इलाकों में भाजपा की ताकत अब भी बरकरार है। जीएसटी को लेकर हुए विरोध का केंद्र रहे सूरत में भी वह ताकतवर बनी रही। साफ है कि जीएसटी के क्रियान्वयन से सत्तारूढ़ पार्टी की सियासी संभावनाएं धूमिल नहीं हुई हैं। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में पसरी बेचैनी ऐसा कर सकती है। यह बेचैनी काफी हद तक साझा है और इसके कई रूप हैं। ग्रामीण

खेतिहर जातियों के युवा रोजगार की कमी के कारण गुस्से में हैं और सीमांत किसान भी कृषि के अधिक लाभप्रद नहीं रहने से परेशान हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य के प्रति भाजपा का रवैया शहरी इलाकों में खाद्य मुद्रास्फीति रोकने के लिए थोड़ा-थोड़ा मूल्य बढ़ाने का रहा है। सौराष्ट्र जैसे इलाके में भाजपा को आसान जीत की उम्मीद रही होगी लेकिन यहां पर कांग्रेस भी सम्मानजनक प्रदर्शन करने में सफल रही है।

सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों की इस बेचैनी पर ध्यान देना होगा। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस साफ सियासी संकेत पर उसकी प्रतिक्रिया बिना सोचे-समझे न होकर संतुलित एवं असरदार हो। देश भर में फैली ग्रामीण बेचैनी के सबसे खराब लक्षणों को दूर करने के क्रम में मनरेगा योजना के तहत फंड की कमी पर भी गौर करना होगा। बाजारों से ग्रामीण क्षेत्रों का बेहतर संपर्क बनाने को भी प्राथमिकता देनी होगी। कृषि उत्पादों के निर्यात पर मनमाने तरीके से लगाई जाने वाली रोक बंद होनी चाहिए ताकि किसानों को भी वैश्विक स्तर पर उन उत्पादों की कीमतें ऊंची होने पर लाभ कमाने का मौका दिया जा सके। फिलहाल कीमतें कम होने पर किसानों को उसका खमियाजा खुद उठाना पड़ता है जबकि अधिक मूल्य होने पर उन्हें उसका लाभ लेने का मौका ही नहीं मिल पाता है। इसके चलते कृषि एक ऐसे खेल में तब्दील हो चुकी है जिसमें उत्पादक के प्रति पूर्वग्रह होता है। कृषि ऋण माफी जैसे लोकलुभावन कदमों से किसानों को कोई फायदा नहीं होगा। कृषि क्षेत्र के लिए बाजार-समर्थक सुधारों को लागू करना कहीं अधिक फायदेमंद होगा।

राष्ट्रीय
सहारा

Date: 18-12-17

वही ढाक के तीन पात

शशि कुमार झा



अर्जन्टीना के बुएनोस एरेस में आयोजित विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की 11वीं मंत्रिस्तरीय बैठक फिर ढाक के तीन पात साबित हुई। विकसित देशों खासकर, अमेरिका की विकासशील और अल्प विकसित देशों की समस्याओं के प्रति बेरुखी फिर उजागर हुई। यह बात फिर पुरजोर तरीके से साबित हुई कि विकसित देशों को विकासशील और अल्प विकसित देशों की समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है और वे इन देशों में व्याप्त भुखमरी और कुपोषण जैसी बुनियादी समस्याओं को लेकर भी पूरी तरह बेपरवाह हैं। विकसित देशों की दबंगई का इससे बड़ा नमूना नहीं हो सकता कि जहां एक ओर वे विकासशील देशों में

खेती पर आश्रित सबसे बड़ी जनसंख्या को लेकर कोई सहूलियत नहीं देना चाहते, वहीं दूसरी ओर ई-कॉमर्स के लिए नियंत्रण नियम बनाने के लिए विकासशील देशों पर लगातार दबाव डाला जा रहा है। जाहिर है अपने गरीब किसानों को बचाने के लिए जद्दोजहद करने वाले देशों के लिए ई-कॉमर्स उनके वजूद से बड़ा मुद्दा नहीं हो सकता।

नियंत्रण ई-कॉमर्स नियमों को लेकर भारत का मानना है कि इस मुद्दे पर विभिन्न कार्य समूहों में विचार विमर्श जारी रहे और जब बातचीत एक विशेष स्तर तक पहुंच जाए तो आगे की कार्रवाई करने के लिए इसे डब्ल्यूटीओ की आम परिषद के समक्ष रखा जाए। लेकिन विकसित देशों की कोशिश ई-कॉमर्स पर त्वरित कार्य योजना के निर्माण की थी ताकि यह जल्द से जल्द इसी 11वीं मंत्रिस्तरीय बैठक में पेश हो जाए। वस्तुओं एवं सेवाओं में व्यापार तथा बौद्धिक संपदा अधिकारों में अपने सदस्य देशों की समस्याओं और उनके विवादों को निपटाने के लिए 1 जनवरी, 1995 को वजूद में आए इस अंतरराष्ट्रीय संगठन पर शुरू से ही विकसित देशों, खासकर, अमेरिका की दबंगई हावी रही है। अगर डब्ल्यूटीओ सदस्य देशों के बीच की समस्याओं के समाधान या यहां तक कि बातचीत की प्रक्रिया को लेकर भी कोई ठोस प्रगति हासिल नहीं कर पाया है तो इसकी सबसे बड़ी वजह विकसित देशों का अड़ियल रवैया ही रहा है।

इस बार की मंत्रिस्तरीय बैठक का सबसे बड़ा मुद्दा खाद्यान्नों की सार्वजनिक हिस्सेदारी को लेकर था, जिस पर अमेरिका ने सहमति जताने से बिल्कुल इनकार कर दिया। उल्लेखनीय है कि डब्ल्यूटीओ नियमों के तहत भारत जैसे विकासशील देशों को गेहूं एवं चावल जैसे खाद्यान्नों की सार्वजनिक खरीदारी को फसल के मूल्य के 10 प्रतिशत के भीतर सीमित रखने की जरूरत होती है। जब भारत ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 को लागू किया तो उसका उद्देश्य अपनी 1.3 अरब की जनसंख्या के लगभग दो तिहाई हिस्से को सब्सिडी प्राप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना था जिस वजह से सार्वजनिक खरीद की मांग में बेतहाशा बढ़ोतरी हो गई। दिसम्बर 2013 में बाली में आयोजित बैठक में भारत तथाकथित “पीस क्लॉज” हासिल करने में सफल रहा जिसके अनुसार, अगर भारत 10 प्रतिशत की सीमा को पार करता है तो अन्य सदस्य देश डब्ल्यूटीओ विवाद निपटान तंत्र के तहत कोई कानूनी कार्रवाई नहीं करेंगे। हालांकि इस बात पर ऊहापोह की स्थिति बनी रही कि यह अस्थायी राहत चार वर्षों तक जारी रहेगी या नहीं।

2014 में जब नरेन्द्र मोदी की सरकार सत्ता में आई तो उसने विकसित देशों के सामने इस मसले को मजबूती से रखा और स्पष्ट किया कि अगर डब्ल्यूटीओ की मंत्रिस्तरीय बैठक में इसका कोई स्थायी समाधान नहीं ढूंढा जाता तो यह शांति क्लॉज अनिश्चित काल तक जारी रहेगा। भारत ने भले ही अपने अधिकांश खाद्य पदार्थों को खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम में शामिल कर चुका है और नए खाद्य कार्यक्रमों पर प्रतिबंधों से उस पर कोई अधिक फर्क नहीं पड़ेगा, विकासशील देश के अग्रणी नेता होने के कारण उसे कीनिया, जिम्बाब्वे जैसे अन्य विकासशील देशों के हितों का भी ध्यान रखना है जिन्हें ऐसे प्रतिबंध रास नहीं आ रहे। न केवल भारत बल्कि चीन ने भी विकसित देशों की इस शर्त को हटाने के लिए लड़ने का वादा किया है। भारत तथा कुछ विकासशील देशों के सामने की एक और समस्या उनके संसाधनविहीन मछुआरा समुदाय के हितों की लड़ाई से संबंधित भी है, जिस पर विकसित देशों के हठी रवैये के कारण कोई सहमति नहीं बन रही। अगर ऐसे ही चलता रहा तो मतभेदों और असहमतियों की यह दूरी कभी पाटी नहीं जा सकेगी, इसलिए इस नियंत्रण संस्थान से जुड़े सभी पक्षों के लिए बेहतर यही है कि वे खुले दिल से और अपने निजी स्वार्थों से परे जाकर इसकी साख को भरोसेमंद और स्थायी बनाने में अपना योगदान दें।



Date: 18-12-17

Skills within schools

It is vital to incorporate Skill India into the education system

Gaurav Arora is General Manager, Skills@school, Salaam Bombay Foundation

India has among the youngest populations in the world, which means it can make a resourceful pool of manpower. A pre-requisite though is that it receives the right form of education, skills and employment. A step in this direction is the Skill Development Mission. However, an issue that has been plaguing India since long now is jobless growth. The skilling programme has been built such that it provides short-term training to youth who have already dropped out from school. The idea is to provide them with a job by offering short-term technical/non-technical courses rather than actively enable them to seek out a career.

The concern here is that those who gained employment post-training were found to have dropped out in less than one year. For those who completed a year in employment, the system did not offer a career because career advancement is not just related to skills, but also to educational qualifications. The issue is that the same system that endeavours to provide jobs to youth restricts their career advancement, labelling them instead as dropouts. The skill programme fails to understand how integral it is to incorporate such a huge initiative within the education system. A system that integrates skills and education can go a long way in ensuring that the youth are better equipped to handle a challenging employment market.

The Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (RMSA) is a centrally sponsored scheme of 'vocationalisation' of secondary and higher secondary education. It focusses on enhancing the employability of youth through demand-driven, competency-based, modular vocational courses, while reducing drop-out rates. Yet, its biggest drawback is that its modules are not customised to suit the requirements of children in different age groups. The same approach for skill training a 12- or 14-year-old cannot be followed for training an 18-year-old because skills need to be looked at more dynamically. Skills at school should be imparted as a hobby and not as a serious trade, to make learning fun.

Moreover, operational challenges within the schools are barriers to coalesce the education and skill model. For instance, BMC schooling in Maharashtra doesn't provide for more than 70-80 hours per year for a vocational subject opted for by a student. Thus, it is not possible to complete the desired National Occupational Standards requirement of 150 hours for skills training. Also, there is lack of proper infrastructure and unavailability of quality trainers. We need strategic thinking while looking at skills at school. The government must learn from the gaps while implementing its skill development programmes for 18-plus youth and then develop its strategy for integrating skills within schools.

Date: 18-12-17

The question of intraparty democracy

Most leaders are unwilling to institutionalise procedures for the selection of office-bearers

Zoya Hasan is Professor Emerita, Centre for Political Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Prime Minister Narendra Modi has repeatedly targeted the Congress over charges of dynastic politics and the lack of internal democracy in the party. The elevation of Rahul Gandhi as Congress president has been used by the Bharatiya Janata Party (BJP) to portray the Congress as an organisation that adheres to the principle of dynastic succession in contrast to the rise of its party workers to top echelons to project itself as a party with a difference. The domination of the Nehru-Gandhi family over the Congress is unmistakable — Mr. Gandhi is the sixth member from the family to occupy the top post in the party. The facts and implications of Mr. Gandhi's election as party chief are clear, but what about the BJP? Does it have contested elections? Is there intraparty democracy in the BJP and in other political parties?

Although election of the party president cannot be the sole criteria for judging intraparty democracy, the BJP views the matter solely through the lens of how parties elect chiefs. The facts are clear in the case of the BJP too: there has been no contest for the president's post in the BJP since it was founded in 1980. All presidents have come through the selection or nomination route. Elections have taken place at the State level, but this practice too has been jettisoned in recent years in favour of election by consensus.

Centralised decision-making

The selection of the party president in the BJP is not guided by dynastic succession; it is generally guided by the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) which plays the most important role in picking the party president. Legitimate questions arise about the influence of the RSS on the BJP, which invariably get brushed aside by drawing attention to the lack of internal democracy in the Congress. Also, there is an assumption that the BJP as a non-dynastic party would have better intraparty democracy. But there is no major difference between the two parties in their internal democratic structures. The vanishing of democracy in the Congress as a result of the centralising impulses of Indira Gandhi has been the subject of unrelenting criticism, but nearly all parties are centralised in their decision-making and have been run from the top down in terms of distribution of party tickets, selection of Chief Ministers and State party leaders, and party finance.

The Congress led the way, but most other parties have been quick to follow the model. In the Congress, the selection of the Chief Minister is not left to the legislature party in the State assembly. This is a far cry from the situation before the 1969 split in the party when recommendations of State units for candidates for parliamentary or Assembly seats or Chief Minister were almost always accepted by the central leadership. Likewise in the BJP, on issues that are of crucial importance, the top echelons appear to play a decisive role.

Furthermore, family rule has been a striking feature of the Congress but it is only fair to note that this is not a monopoly of the Congress. Quite a few political families have sprung up in the recent past, and more are mushrooming. In other words, what began in the Congress now extends to the bulk of party politics.

Of the BJP's elected MPs, 14.49 % in 2004, 19.13% in 2009 and 14.89% in 2014 were dynastic. The BJP had given party tickets to a swing of dynasts in the U.P. Assembly elections.

Evidence from other democracies, however, shows a trend towards greater intraparty democracy, decentralisation and transparency within parties. In Germany, for example, parties are required to meet certain conditions in nominating their candidates to party posts. They have to be chosen by a direct secret vote at both constituency and federal levels. In the U.S., laws were enacted that required the use of secret ballots in intraparty elections. The British Labour Party, the Spanish Socialist Workers' Party, the Democratic Party in the U.S. and the Progressive Conservative Party of Canada have all seen movements by party activists and by the rank and file to reduce the power of entrenched party elites.

In India, on the other hand, there is no real movement towards democratisation of parties; the selection of candidates, Chief Ministers and office-bearers of party units is usually left to the discretion of a handful of leaders who take decisions behind closed doors. India's success in consolidating a democratic system of government has paradoxically forestalled pressure for party reform. Taken as a whole, the electoral process is more representative but political parties look a lot like oligarchies. Most parties are subservient to one supreme leader who can impose his/her offspring on the party, and even electoral defeat does not loosen their control or hold over the party. Political parties — with the exception of the Left parties — still refuse to lay down settled and predictable procedures for almost everything they do, from the selection of candidates to the framing of a manifesto.

The biggest weakness of parties

The question of party reform is a pressing one in India. While many argue that intraparty democracy is essential to sustain broader political democracy, this is not a panacea for the numerous problems facing parties. The more significant issue is the lack of institutionalisation and, partly as a consequence, democratisation. The biggest weakness of parties is that they are leader-centric and most leaders are unwilling to institutionalise procedures for the selection of candidates and increase the participation of members in party functioning to prevent elite capture from getting entrenched. As a rule, strong leaders rarely support institutionalisation because it constrains their discretion and personal power. This has proved detrimental to the political system as it impedes the growth of broad-based non-sectarian parties which can effectively articulate and aggregate a variety of interests. This is a major challenge facing the party system because party activity driven by partisan mobilisation lies at the root of much of the schism and disruption of Indian politics today.

Another aspect is the reduction of party organisations into election-winning machines, which depend for their success on the charisma of the leader and their capacity to win elections. Winning elections has become the only role a party envisages for itself. The privileging of elections at the expense of other aspects of the democratic process implies that parties are inattentive to the need for constant organisational change and renewal. Leaders are valued for their capacity to attract crowds and raise funds as elections become more and more expensive. The opacity of political financing, necessitates 'unhindered top-down control' and 'absolute loyalty down the line', argues political scientist, E. Sridharan. If party funds are raised and controlled centrally, this weakens the State units and rank and file vis-à-vis the central leadership on a range of issues including leadership selection and nominations for elections. It also discourages democratisation as this would limit their power to accumulate wealth or amass a fortune or promote personal power at the expense of public interest.

